0

परिकल्पना

© लेखक

संस्करण : 2022
ISBN : 978-93-87859-///

शिवानंद तिवारी द्वारा *परिकल्पना,* बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स,
सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092 से प्रकाशित और
शेष प्रकाश शुक्ला, दिल्ली से टाइप सेट होकर
काम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 में मुद्रित

उन साथियों को
जिनके सानिध्य में रहकर
लेखन कार्य संभव हो सका
जेब अख्तर, शिरोमणि महतो,
अजय यतीश, ओमप्रकाश कृत्यांश,
श्यामल बिहारी महतो को सादर समर्पित

अनुक्रम

1. भीतर बैठा आदमी.. 9
2. श्रम का शोर 11
3. एक आँख नींद 13
4. उम्मीद 16
5. चलो, चलें..., कि वे, बुलाते हैं 18
6. मशीनों से पहले का आदमी 20
7. आखिरी कौर 23
8. पेट के लिए दिल्ली 24
9. तहरीर में पिता... 27
10. पच्छिम दिशा का लंबा इंतजार.. 29
11. नौकर... 31
12. इस धरा पर औरतें... 34
13. वो, फिर कभी नहीं लौटा.. 37
14. किसान पिता... 41
15. मेहनत कश हाथ 45
16. रोते हुए भी होता है प्रेम... 47
17. निरीह लड़कियाँ... 49
18. बचे रहने देना... 52
19. मल्टीनेशनल कंपनियाँ और विज्ञापन... 54
20. पहनने का सुख... 58
21. शुक्रिया... 61
22. पिता की ख्वाहिश... 64
23. पागल 66
24. माँ का कमरा 69
25. माफिया 72
26. हमारे बीच की खाली होती जगहें 75

27. सुंदर लड़कियाँ... 77
28. एक अच्छे कल के इंतजार में... 79
29. पिता के हाथ की रेखाएँ 82
30. क्षरण 84
31. पीठ पर बेटियाँ... 87
32. विश्वास... 90
33. आँगन, गौरैया और धूप... 92
33. पहचान का सँकट... 94
35. पिता 96
36. उद्विग्न कवि 98
37. कूड़े में फेंकी हुई बेटियाँ... 99
38. जीवित पिता का दुःख 102
39. पिता पुराने दरख़्त की तरह होते हैं 105
40. बेटियाँ.. 109
41. होड़ 111
42. चुनौती को अवसर बनाईए... 113
43. चिड़ियों को मत मरने दो.. 115
44. संवेदना 117
45. एक आदिवासी की घोषणा... 118
46. जब जरूरत हो हमें बुला लेना.. 120
47. नदी का सवाल.. 122
48. जब जँगल नहीं बचेंगे... 124
49. प्रेम... 126
50. प्रेम... 128
51. स्त्री और नदी... 130
52. माँ के हाथ का स्वाद... 132
53. तकिये... 133
54. मजदूर 135
55. इंतजार में है गली... 137
56. आओ मिलकर दीप जलायें 140
57. कील 142
58. कील-2 144

दो शब्द

महेश कुमार केसरी एक दृष्टिसंपन्न प्रतिभाशाली युवा कवि हैं। इधर कोरोनाकाल के दो सालों में उसकी प्रतिभा में काफी निखार आया है। इन दो सालों में दो कविता-संग्रह का प्रकाशन उसकी विरल प्रतिभा व दक्षता का प्रमाण है। जब कोई कवि द्रुतता से कविताएँ लिखता है, तो उनमें दुहराव अथवा छितराव होने का डर होता है। लेकिन, इन कविताओं से स्पष्ट रूप से लक्षित होता है कि उसके कवि-कर्म का विस्तार हुआ है।

यह युवा कवि अपने समय और समाज के प्रति सजग व सचेत है। वह अपने आसपास के जैव-जगत तथा उसके यथार्थ का सूक्ष्म अवलोकन करते हुए उसका विशद् विश्लेषण करता है। इसीलिए लगभग सभी कविताओं में आमजन के दुःख-द्वंद्व तथा सामाजिक-विद्रूपताओं का बोधगम्य-भावप्रवण अंकन हुआ है। मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था और संवेदनात्मक तरलता इनका जीवनद्रव्य है...!

आश्वस्ति इस बात की है कि कवि आमजन के श्रम के सौन्दर्य को देख पाता है। उसके संगीत को सुन पाता है और उसे अधिष्ठित करने को संकल्पबद्ध दिखता है...

''श्रम का शोर एक संगीत की तरह
बजता है हमारे भीतर
और दुनिया को बनाता है
सुंदर-अतीव सुंदर''

शिरोमणि महतो
नावाडीह बोकारो

1. भीतर बैठा आदमी..

बचपन में हमें जोर देकर
बोलने के लिए प्रेरित किया
जाता है

और हम पहचानने लगते हैं
बोलकर वर्णों, को, क से
कलम ख, से खरगोश..

वर्ण के बाद अक्षर से
साबिका होता है, नदी,
पेंड़, पहाड़, झील, दरिया,
धीरे-धीरे हम सब समझने
और, बोलने
लगते हैं...

एक खास उम्र तक हमें ये
सिखाया जाता है, कि जो,
कुछ बोलना है उससे पहले
सौ बार सोचो क्योंकि तीर-
कमान से और बात जुबान
से निकलने के बाद
कभी वापस नहीं होते...

अफसोस इस बात का रहता है
कि उस वक्त जब हमें ये समझाया
जाता है कि क्या बोलना है..?

और कितना बोलना है उस वक्त
हमें ये बात समझ नहीं आती
और, इसे हम मजाक में
उड़ा देते हैं

लेकिन, एक खास उम्र में
पहुँच कर
धीरे-धीरे कम बोलने की
पड़ने लगती है... आदत

ऐसा नहीं है कि आदमी के अंदर
बोलने की चाह नहीं उठती
या वो बोला नहीं सकता

लेकिन, वो बोलने की सोचता
है, तभी उसका हाथ पकड़ लेता
है, उसके ही अंदर बैठा कोई एक आदमी

और, वो चाहकर भी नजर अंदाज
करता जाता है सामने वाली की बात।

2. श्रम का शोर

निकल पड़ा है मजदूरों
का झुँड मिल से छुट्टी के
बाद और टुनटुनाती
हुई साईकिलों की घँटियों
का शोर एक संगीत पैदा कर
रहा है, जैसे किसी झरने का
मद्धिम शोर...

धान रोपती स्त्रियाँ
बातें करते-करते
आपस में हँसती हैं
खिलखिलाकर तो
बजने लगता है एक संगीत
चहुँ दिशाओं में...

हल-गैंता-कुदाल चलाता
किसान करता है जब
ठक-ठक की आवाज
तो, बजने लगता है,
धरती के भीतर कोई संगीत
और, धरती बिखेरती है,
अपनी मुस्कुराहट में अन्न
के दाने...

पत्थर तोड़ता मजदूर
जब हथौड़े से ठाँय-ठाँय

करता है, तब उसके
भीतर बजता है कोई संगीत
और आकार लेने लगता है
उसका श्रम पसीना
बनकर

और, जब कोई शिल्पकार
पत्थर को तराश रहा होता
है, अपनी छैनी-हथौड़ी से
तब भी होती है
मद्धिम-मद्धिम आवाज
और, आकर लेने
लगती है कोई आकृति
और उसके मन में
बजने लगता है एक संगीत
कुछ नया गढ़ने का

कल-कारखानों से निकलने
वाली मशीनों का शोर
भी एक लयबद्ध संगीत की तरह
बजता है कहीं मजदूरों
के भीतर...
क्योंकि, यही श्रम देता है
मुँह को निवाला, रहने को
छत... और, एक बेहतर कल

श्रम का शोर एक संगीत की तरह
बजता है, हमारे भीतर
और, दुनिया को बनाता है
सुंदर... अतीव सुंदर...

3. एक आँख नींद

बहुत सोचा की कौन
लोग सोते हैं एक आँख
नींद..?

एक आँख नींद जीती है
कोई स्त्री की आँख

स्त्री की आँखें रात को
सोती नहीं वो, करती
रहती है,
भोर होने का इंतजार...

स्त्री की आँखें
रात और भोर
होने के बीच
ही कहीं जीती हैं

वो, इसलिए भी भोर
होने से पहले चौंक-चौंक
जाती हैं,

और उठकर देखती है घड़ी
कि कितनी घड़ी
और बची हुई है रात
कि कोई बरज

ना सके देर तक लगातार
सोते रहने के कारण

इसलिए स्त्री सोती है
रात और भोर होने के
बीच कहीं...

या बहुत समय से परदेश
गया कोई आदमी
जिसकी माँ घर
में हो बीमार...

या कोई बहन हो रही है
ताड़ जैसी लंबी
जिसको लेकर गाँव में
तरह-तरह की हो रही
हों, बातें...

या जिसके रेहन रखें हों
खेत
जिसको सालों पहले
छोड़कर वो आ गया हो शहर

या, वो किसान
जिसे देना हो अपने
खेतों को पानी
या काटनी हो फसल...

कामकाजी, लोग
एक आँख ही सोते हैं
और निकल पड़ते हैं
जिम्मेवारियों और काम को

कँधे पर अँगोछे
कि तरह टाँगे...

उनींदी आँखें हमेशा
जगती हैं
दूसरों के सपनों को साकार
करने के लिए

4. उम्मीद

किसान अपने खेतों में बीज
रोपता है, उसे सींचता है
क्योंकि उसे
मालूम है कि कल को जो
फसल आयेगी तो उससे
लोगों का जीवन सुख से
महकेगा!

उसे पूरा भरोसा है कि
फल-फूलों के बाद
फसल जरूर
आयेगी

दुःख के दिन बुहर जायेंगे
और, सुख किलकारियाँ
भरेगा
वसुँधरा की गोद में!

चिड़ियाँ सुबह जब अपने
घोंसले से निकलती हैं,
तो उसे मालूम होता है,
कि, उसे खाना मिलेगा
और, शाम को अन्न से
उसका पेट भरा-भरा होगा

काम पर जाते हुए, आदमी
के लिए, इस उम्मीद में
गृहणी खाना बनाती है,
कि जब रात होगी तो
बच्चे और उसका आदमी
लौटेंगे खाने के लिए खाना

प्रेमिका भी अपने प्रेमी का
एक खास समय में खास
जगह करती है, इंतजार
उसे पता है कि एक तय
वक्त में वो, मिलने आयेगा

परदेश कमाने गये
आदमी का इंतजार
मुँडेर पर बैठा कौआ
तक करता है..

जब इतने उम्मीदों से
भरी हुई है दुनिया तो,
लोग नाउम्मीद क्यों
होतें हैं...?

जब, मालूम है कि ऋतुएँ,
बदलेंगीं
पतझड़ के बाद वसंत लौटेगा
बागों में फिर से फूल खिलेंगे
आमों पर फिर से मोजरें
लगेंगीं...
चिड़ियाँ, बागों में
फिर, चहचहायेगी
और, प्रेमियों के मन में फागुन उफान मारेगा

5. चलो चलें..., कि वे बुलाते हैं

चलो, चलें पहाड़ों के
पास ऊपर चलकर आवाज
लगाई जाये ओर पुकारा जाये
किसी का नाम... देखना पहाड़
भी हमें बुलाते हैं..

चलो, किसी, आदिम सभ्यता
की ओर, जहाँ, बिताएँ
रात किसी गुफा में...
और, महसूस कर सकें,
खोह, में समाये उस आदिम डर
के रोमांच को...!

चलो, जँगल बुला रहे हैं,
चुनकर खाया जाये जँगलों
में गिरा फल...

कि, कैसे, नदियाँ, बुला
रही हैं, कि, चलें, करने
नौका विहार...

कि, फिर इस बार कोयल का
गीत, सुन आएँ, कि जँगल
पुकार रहा है...

कि, आओ, गाएँ कोई,

आदिम गीत, जिसे सुनकर
मन हो जाये पुलकित..!

सुन, आयें फिर, से नानी की
गोद, में, रानी परी और
चुड़ैल की कहानियाँ...

कि, चलो, पढ़ने निकल
पड़े... किसी सभ्यता
की भाषा...

चलो, बनायें, मिट्टी के
वही पुराने बर्तन...

चलो, चलें, किसी अंजान टापू
पर इस कोलाहल से दूर...
जहाँ, समँदर पर तैरती
हो सूर्य की रश्मियाँ...

कि, पुकार रही है सूर्य की
खत्म होती लालिमा...
घुँघलाती हुई एक शाम...
एक लालटेन टँगी झोपड़ी...
मिट्टी के बर्तन में पकता कहीं
खीर...

चलो... चलें... आदिम
स्वाद और गँध की ओर
वो बुला रहें हैं...

6. मशीनों से पहले का आदमी

मशीनी युग से पहले का
आदमी खटता था,
अपने खेतों
में हल-बैलों के साथ...
आलस से था वो कोसों दूर...

वो, पूजता था, दिशाएँ,
और प्रकृति के सभी
स्वरुपों को

वो, नदियों को पूजता
था, ...अपना इष्ट मानकर

वृक्षों की करता
था... सेवा...

पहाड़ उसके लिए
होते थे... देवता...

रचना, उसके लिए,
कभी...एक, शौक था...
कला उसके जीवन
का अभिन्न हिस्सा हुआ
करती थी...

वो, उकेरता था, पत्थरों

पर, आकृतियाँ, रँगता था
मिट्टी के बर्तनों को ...
बनाता था, फूस की झोपड़ियाँ
बाँस से बुनता, टोकरियाँ,
पत्तों से बनाता था दोने...

खाता, था, खाना
जमीन पर बैठकर,
आलती-पालथी
मारकर
मिट्टी के बर्तनों में
जमीन से जुड़कर...

जमीन से जुड़कर
वो निहायत जमीनी
हुआ करता था...

सच, ये भी है कि, प्रकृति ने
हल- बैल, बाँस-पत्ते,
हवा, रौशनी की कभी कोई
कीमत नहीं माँगी
रंग, पहाड़, पत्थर पानी सब
मुफ्त में दिये...

ये सच है कि, मशीन ने
आदमी के काम को
बहुत आसान बना दिया
और धीरे-धीरे आदमी
मशीन का अभ्यस्त
होता गया...

आदमी की साजिश...

आदमी और उसके श्रम के
विस्थापन
को लेकर की गई थी...

मशीनों के आने के बाद
उसके हिस्से की हवा
खराब करने लगे मशीन...

लेकिन, धीरे-धीरे
साजिश करने वाले आदमी
को भी ये नहीं पता चला
कि वो कब इतना ज्यादा
निर्भर रहना लगा मशीनों पे कि
उसका पूरा वजूद ही
निगल गये हैं मशीन...

7. आखिरी कौर

दिहाड़ी खटती माँ, को
भूख भी अधिक लगती...
तब, भी, अपने खाने से
माँ, हमेशा बचाकर रखती कुछ
कौर, मेरे लिए...

जबतक मैं ये ना कहता
कि अब, बस पेट भर गया
तब तक अपने हिस्से का
आखिरी कौर भी मुझे खिलाती
जाती थी माँ...!

8. पेट के लिए दिल्ली

आज टी.वी. पर दिखे कुछ
चेहरे जो महामारी खत्म होने
के तुरंत बाद लौट आये
दिल्ली...

जैसे, वो महामारी खत्म
होने की उलटी गिनती
गिन रहे हों...

ऐसे चेहरों से निचुड़
गई, थी खुशी...
कुंभला गये थे
ऐसे... चहरे...

उनके चेहरे को देखकर
ऐसा लगता....
मानों, सदियों से...
वो इसी तरह चल रहें
हों... दिशाहीन होकर
...निरूउद्देश्य...

और, सदियों, से टाँक दी
गई, हो जबरदस्ती
उनके चेहरों पर, निचुड़न...

बिखरे बाल, गड़मड़ चेहरे...

जैसे... एक-दूसरे से
आपस-में-बहुत हद तक
मिलते-जुलते हों...

बड़ी अजीब बात है
कि उदासी भी और
दुःख भी सभी चेहरों
पर एक जैसा था...

जैसे सैकड़ों चेहरे
पर एक से मुखौटे...

ढोते हुए, बोझ
अपनी, जिम्मेदारियों का
वो, इसी तरह बहुत बार
लौटते हैं, दिल्ली...
वापस काम की तलाश में...

नहीं बचा होता
उनमें कोई कौतुक, कहीं
घूमने-फिरने को लेकर...

दिल्ली में रहते हुए भी
वो नहीं देखने जाते
कभी लाल-किला...

नहीं जगा पाते
अपने मन में...
कभी देखने जाना
हुमायूँ का मकबरा...

ना, ही कभी वो जा पाते हैं
देखने इंडिया गेट...
उनके लिए होती है...
ये वक्त की बरबादी...

वे, एक वृत के अंदर
घूमते रहते हैं...
चावल-दाल, नून-तेल की
जुगाड़, में...

वो, दिल्ली घूमने नहीं जाते
पेट के लिए जाते हैं दिल्ली...

9. तहरीर में पिता...

ये कैसे लोग हैं...?
जो एक दुधमुँही नवजात
बच्ची के मौत को नाटक
कह रहें हैं...

वो, तहरीर में ये लिखने
को कह रहे हैं कि
मौत की तफसील
बयानी क्या थी...?

पिता, तहरीर में क्या
लिखते...?
अपनी अबोध बच्ची
की, किलकारियों
की आवाजें...

या... नवजात बच्ची...
ने जब पहली बार...
अपने पिता को देखा
होगा मुस्कुराकर...

या, जन्म के बाद
जब, अस्पताल से
बेटी को लाकर
उन्होंने बहुत संभालकर
रखा होगा... पालने... में...

और झूलाते... हुए...
पालना... उन्होंने बुन रखा
होगा... उस नवजात को
लेकर कोई.... सपना...

वो तहरीर में उन खिलौनों
के बाबत क्या लिखते...?
जिसे उन्होंने... बड़े ही
शौक से खरीदकर लाया था...

वो तहरीर में क्या लिखते...?
कि जब, उस नवजात ने
दम तोड़ दिया था
बावजूद... इसके वो
अपनी नवजात बेटी में भरते
रहे थे, साँसें...!

मैं, सोचकर भी काँप जाता हूँ
कि कैसे, अपने को भ्रम में
रखकर एक बाप लगातार
मुँह से भरता रहा होगा
अपनी बेटी में साँसें...!

किसी नवजात बेटी का मरना
अगर नाटक है...
तो, फिर, आखिर एक बाप
अपनी तहरीर में बेटी की मौत
के बाद क्या लिखता...?

.

10. पच्छिम दिशा का लंबा इंतजार..

मँझली काकी और सब
कामों के तरह ही करती
हैं, नहाने का काम और
बैठ जाती हैं, शीशे के सामने
चीरने अपनी माँग...

और अपनी माँग को भर
लेती हैं, भखरा सेंदुर से...
भक..भक...
और
फिर, बड़े ही गमक के साथ
लगाती हैं, लिलार पर बड़ी
सी टिकुली.....

एक, बार अम्मा नहाने के
बाद, बैठ गईं थीं तुंरत
खाने पर,
लेकिन, तभी
डाँटा था मंझली काकी
ने अम्मा को....

छोटकी, तुम तो
बड़ी, ढीठ हो, जब, तक
पति जिंदा है तो बिना सेंदूर
लगाये, नहीं खाना चाहिए
कभी... खाना...

बड़ा ही अशगुन होता है,
तब, से अम्मा फिर, कभी
बिना सेंदुर लगाये नहीं
खाती थीं, खाना...

मँझले काका, काकी से
लड़कर सालों पहले
काकी, को छोड़कर कहीं दूर
निकल गये... पच्छिम...
बिना... काकी को कुछ बताये...

गाँव, वाले कहते
हैं, कि काकी करिया
भूत हैं, ...इसलिए
भी अब कभी नहीं
लौटेंगे काका...

और कि काका ने
पच्छिम में रख रखा
है एक रखनी और...
और, बना लिया है, उन्होंने
वहीं अपना घर...

काकी पच्छिम दिशा में
देखकर करती हैं
कंघी और चोटी और भरती
हैं, अपनी माँग में सेंदुर..
इस विश्वास के साथ
कि काका एक दिन... जरूर...
लौटकर आयेंगे....

11. नौकर...

हम, नहीं देखते सुबह-
शाम, दिन-रात, और समय
-असमय
और,
हम कभी-भी दे देते हैं उसको
कोई भी आदेश...

चाहे, रात के बारह बजे
हों या दो...
हम उसे आदेश
दे, देते हैं कि हमारा आदमी
अलाने जगह से आ रहा है
या फलाने जगह जाने वाला है...
उसे वहाँ से ले आओ...
या अमुक जगह पहुँचा आओ...
कड़कड़ाती, हुई ठँडी रात
हो या चिलचिलाती उमस भरी
गर्म दोपहर...

वो, हमारा
नौकर, से ज्यादा गुलाम होता है...

हम, कभी सधे हुए, शब्दों
में, या कभी सुस्ता कर
उससे प्रेम से
नहीं करते कोई बात...

हम, कभी भी कहीं भी
दिन-दोपहर, सुबह-शाम
घर में या साथ लेकर
उसे चलते हुए बाजार
किसी भी ऐरे-गैरे
के सामने कुछ भी कह देते हैं...
या कभी-कभी गालियों से
भी करते हैं, बात...

नौकर, चुपचाप खड़ा होकर
सुनता रहता है, हर ऐरे-गैरे
नत्थू-खैरे से भी गया बीता
होकर हमारी घुड़कियाँ और
बात...

मैं, कभी-कभी सोचता हूँ
कि, पहली बार किस मालिक
ने, किस नौकर को कब डाँटा
और, मारा होगा...?

या, ये सिलसिला कब और
कहाँ जाकर रुकेगा...?

और, ये आवृत्ति कितनी
बार दोहराई गई, होगी...?

डाँट, खाने के बाद
घर जाकर
नौकर ने, अपना गुस्सा कितनी
बार, अपने घरवालों
पत्नी और बच्चों
पर उतारा होगा...

और, मालिक की डाँट
का और कितने लोगों
के जीवन पर पड़ा होगा
इसका प्रभाव...

या डाँट खाने के बाद
उसे नहीं आती होगी...
नींद
भर-भर रात...

या कि वो फिर... कैसे
सब कुछ सहते हुए अगले
दिन, लौटता होगा अपने
काम पर...

आखिर, हमारी सोच में
कब और कैसे इतना
अंतर आ जाता है...?
कि हम आदमी को
आदमी के अलावा
नौकर समझने लगते हैं...

12. इस धरा पर औरतें...

हम, हमेशा खटतीं मजदूरों
की तरह, लेकिन, कभी
मजदूरी नहीं पाती...

और, आजीवन हम इस
भ्रम में जीतीं हैं कि
हम मजदूर नहीं मालिक...
हैं...

लेकिन, हम केवल एक संख्या
भर हैं...
लोग-बाग हमें आधी आबादी
कहते हैं...

लेकिन, हम आधी आबादी नहीं
शून्य भर हैं...

हम हवा की तरह हैं...
या अलगनी पर सूखते
कपड़ों की तरह...

हमारे नाम से कुछ
नहीं होता...
खेत और मकान
पिता और भाईयों का होता है...

कल-कारखाने पति
और उसके,
भाईयों का होता है...

हमारा हक होता है सिर्फ
इतना भर कि हम घर में
सबको खिलाकर ही खायें
यदि, बाद में
कुछ बचा रह जाये... शेष...

ताजा, खाना रखें, अपने
घर के मर्दों के लिए...
और, बासी
बचे-खुचे खाने पर
ही जीवन गुजार दें...

हम, अलस्सुबह ही
उठें बिस्तर से और,
सबसे आखिर
में आकर सोयें...

बिना-गलती के ही
हम, डाँटे-डपडे जायें
खाने में थोड़ी सी
नमक या मिर्च के लिए...

हम, घर के दरवाजे
या, खिड़की नहीं थे
जो, सालों पड़े रहते
घर के भीतर...

हम, हवा की तरह थे

जो, डोलतीं रहतीं
इस छत से उस छत
तक...

हमारा... कहीं घर..
नहीं होता...
घर हमेशा पिता का या पति
का होता है...
और, बाद में भाईयों का हो
जाता है...

हमारी, पूरी जीवन-यात्रा
किसी, खानाबदोश की
तरह होती है
आज यहाँ, तो कल वहाँ...

या... हम शरणार्थी की तरह
होतें हैं... इस... देश से... उस
देश... भटकते और, अपनी
पहचान... ढूँढते...!

13. वो, फिर कभी नहीं लौटा..

सालों पहले, एक
आदमी, हमारे भीतर
से निकला और,
फिर, कभी नहीं लौटा...

सुना है, वो कहीं शहर, में
जाकर खो गया...

वो, घर, की जरुरतों
को निपटाने
निकला था...
निपटाते-निपटाते
वो पहले तारीख, बना
फिर.. कैलेंडर... और, फिर, एक
मशीन बनकर रह गया...

और, जब मशीन बना तो
बहुत ही असंवेदनशील और,
चिड़चिड़ा, हो गया...

हमेशा, हँसता-खिलखिलाता
रहने वाला, वाला आदमी
फिर, कभी नहीं मुस्कुराया...

और, हमेशा, बेवजह
शोर, करने लगा...

मशीन की तरह...

अब, वो चीजों को केवल
छू-भर सकता था...
उसने चीजों को महसूसना
बंद कर दिया था...

उसके पास, पैसा था
और, भूख भी
लेकिन, खाने के लिए
समय नहीं था...

उसके, पास, फल था...
लेकिन, उसमें मिठास
नहीं थी...

उसके पास, फूल, थें
लेकिन, उसमें खूशबू
नहीं थी...

उसकी ग्रँथियाँ, काम के बोझ
से सूख गई थीं...

प्रेम, उसके लिए,
सबसे बड़ा
बनावटी शब्द बनकर
रह गया...

वो, पैसे, बहुत कमा रहा
था..
लेकिन, खुश
नहीं था...

या, यों कहलें की
वो पैसे, से

खुशियाँ, खरीदना
चाह रहा था...

बहुत दिन हुए
उसे, अपने आप से बातें
किये...

शीशे, को देखकर
इत्मिनान
से कंघी किये...

या, चौक पर बैठकर
घंटों अखबार पढ़े और
चाय, पिये हुए...

या, गाँव जाकर, महीनों
समय बिताये...

पहले वो आदमी गाँव
के तालाब, में मछलियाँ
पकड़ता था...

सँगी-साथियों के साथ
घंटों बतकही करता था...

पहले, उसे बतकही करते
हुए... और
मछली पकड़ते
हुए.. बड़ा... आनंद आता..
था...

लेकिन, अब ये सब, उसे
बकवास के सिवा
कुछ नहीं लगता...

फिर, वो, आदमी दवाईयों
पर, जिंदा रहने लगा...

आखिर,
कब और कैसे बदल
गया... हमारे भीतर का वो..
आदमी...?

कभी कोई, शहर जाना
तो शहर से उस आदमी के
बारे में जरूर पूछना...

14. किसान पिता...

पिता, किसान थे
वे फसल, को ही ओढ़ते
और, बिछाते थे...

बहुत कम पढ़े-लिखे
थे पिता, लेकिन गणित
में बहुत ही निपुण हो
चले थे

या, यों कह लें
कि कर्ज ने पिता
को गणित में निपुण
बना दिया था...

वे रबी की बुआई
में, टीन बनना चाहते
घर, के छप्पर
के लिए...

या फिर, कभी तंबू
या, तिरपाल, वो
हर हाल में घर को
भींगनें से बचाना चाहते थे...

घर, की दीवारें,
मिट्टी की थीं, वे दरकतीं

तो पिता कहीं भीतर से
दरक जाते...

खरीफ में सोचते
रबी में कर्ज चुकायेंगे
रबी में सोचते की खरीफ
में..

इस, बीच, पिता खरीफ
और रबी होकर रह जाते...

उनके सपने, में, बीज, होते
खाद, होता...

कभी, सोते से जागते
तो, पानी-पानी चिल्लाते...

पानी, पीने के लिए नहीं...
खेतों के लिए...
उनके सपने, पानी पे बनते
और, पानी पर टूटते...

पानी की ही तरह उनकी
हसरतें भी क्षणभँगुर होती...

उनके सपने में, ट्यूबल होता,
अपना ट्रैक्टर होता...
दूर-दूर तक खड़ी
मजबूत लहलहाती हुई
फसलें होती...
बीज और खाद, के दाम
बढ़ते तो पिता को खाना

महीनों
अरुचिकर लगता...

खाद, और बीज के अलावे,
पिता और भी चिंताओं से
जूझते...

बरसात में जब, बाढ़
आती, वो, गाँव के सबसे
ऊँचे, टीले पर चढ़ जाते...

वहाँ से वो देखते पूरा
पानी से भरा हुआ गाँव...
माल-मवेशी
रसद, पहुँचाने, आये हैलिकॉप्टर
और सेना के जवान...

उनको, उनका पूरा
गाँव, डूबा हुआ दिखता...

और, वे भी डूबने लगते
अपने गाँव और, परिवार
की चिंताओं में

बन्नो ताड़ की तरह
लंबी होती जा रही थी...
उसके हाथ पीले
करने हैं...

भाई, शहर में
रहकर पढ़ता है, उसको
भी पैसे भेजने हैं..

बहुत, ही अचरज की बात है
कि, वे जो कुछ करते
अपने लिए नहीं करते...

लेकिन, वे दिनों-दिन
घुलते जातें, घर को लेकर
बर्फ, की तरह पानी में...

और, बर्फ की तरह घर
की चिंता में एक दिन...
ठँढे होकर रह गये पिता...!

15. मेहनत कश हाथ

चाय बगानों में काम
करने
वाली सुमंली ने देखा
बढ़ते, तेल का भाव
आटा और, चावल का
 भाव...

और तो और, इस बीच
रिक्शे से आने-जाने
का किराया भी बढ़ा

दस-की जगह बीस रुपये
हो गया किराया...

लेकिन, नहीं बढ़ी उसकी
मजदूरी पिछले दस सालों से,
कभी...

वो अपनी साड़ी
में पैबंद लगाती रही...

अलबत्ता, इन दस
सालों में
वो बदस्तूर खटती
रही...

गर्मी की चिलचिलाती
हुई धूप में भी...

जाड़े के बहुत ठंड
भरे दिनों में भी

तब, जब हम गर्म
लिहाफ
में दुबके पड़े रहते थें...

ताकि, हमारी प्याली में
परोसी जा सके गर्मा-गर्म
चाय...

उस, चाय, की प्याली को
पीते हुए हम पढ़ते रहे
अखबार,

तमाम दुनिया-जहान
के मुद्दे...
मँदिर मस्जिद, लव-जेहाद,
हिंदू-मुसलमान,
अमेरिका-यूरोप,
सीरिया-इराक, युद्ध,
खेल और मनोरंजन...

तमाम मुद्दों पर हमने
चर्चा की सिवाय
सुमंगली के... मुद्दों के...

16. रोते हुए भी होता है प्रेम...

कभी प्रेम के खारेपन
को मैनें इस
तरह भी जाना...

एक ऐसे समय में
जब मैं बीमार पड़ा
तब पत्नी या माँ पढ़
लेतीं थी, मेरे चेहरे
का पीलापन और उस
पर उडती हवाईयाँ...

तब, पत्नी ने लगा
लिया था, मुझे अपने
गले से...
और, देर तक मुझे
अपनी बाँहों में भरे रख था...
और, बहुत देर तक चुपचाप
रोती रही थी...

और, तब उसकी
आँखों से बहने लगा
था, प्रेम...
आँसू, बनकर...
तब, पहली बार
महसूस हुआ कि
हम रोते हुए भी
प्रेम करते हैं

कभी प्रेम को मैनें
इस तरह से भी जाना
अपने बेटे के मुँह से

वो कह रहा था
कि आप
सड़क के बीचों-बीच ना
चला करें...

कहीं किसी दिन...
कुछ ऐसा-वैसा...

और, वो मुझसे
चिपककर, बहुत देर तक
रोता रहा...

अक्सर, परदेश,
कमाने के लिए, घर से
जब मैं निकलता

माँ, अंकवार लेती मुझे
अपनी बाँहों में...

और, मेरे जाने के बहुत
देर बाद तक भी उनकी
आँखें, भींगतीं रहतीं...

तब, मुझे लगा कि केवल
हँसते हुए ही नहीं...
बल्कि, रोते हुए भी लोग
करते हैं प्रेम...!

17. निरीह लड़कियाँ...

निरीह, लड़कियाँ भी लेतीं हैं
साँस, इस धरा पर...,
जैसे और लड़कियाँ
लेतीं हैं साँस...

उनके, भी होते हैं
दो, हाथ दो, पैर
और दो आँखें...

काकी, अक्सर कहतीं थीं
लड़कियों को ज्यादा जोर
से नहीं हँसना चाहिए...

ज्यादा जोर से हँसने से
'लड़कियाँ' बदचलन हो
जाती हैं...

काकी आगे कहतीं-
हँसना है तो, मुँह पर
कपड़ा रखकर हँसो
हँसी बिल्कुल भी...
बाहर, नहीं निकलनी
चाहिए...

हँसी जरा सी
बाहर निकली और

लड़कियाँ, बदचलन हो
जाती हैं...

हमारे घर में हमारी एक
बुआ रहतीं थीं...
रोज सुबह-उठकर गंगा नहाने
जाती...

गाय को हर वृहस्पतिवार
को चना और गुड़ खिलाती...
सारे धार्मिक कर्म-काँड करती...

मनौतियां माँगती...
आस-औलाद.. के
लिए...
और... फूफाजी की
वापसी के लिए...

क्योंकि, बुआ
निःसंतान
थी...
और... फूफा सालों
बाद भी फिर कभी नहीं
लौटे...

बाद, में पता चला फूफा जी
ने दूसरी शादी कर ली है...

बुआ, अलस्सुबह ही उठतीं..
चिड़ियाँ-चुनमुन के उठने से
बहुत पहले...

घर, के बर्तन-बासन से लेकर
झाड़ू-बुहारू तक करती...

खेतों में हल चलातीं...
फसलों को पानी देती...

काकी कहतीं कि, फूफाजी
के छोड़ने से पहले बुआ बहुत
हँसती थीं...

याकि लोग कहते कि
तुम्हारी बुआ बदचलन हैं
इसलिए भी फूफाजी ने
उन्हें छोड़ दिया है...

फूफाजी के चले जाने के
बाद, बुआजी उदास-सी
रहने लगीं... फिर, वे कभी
खिलखिलाकर नहीं हँसीं...

छाती-फाड़कर
समूचे, घर और खेतों
का काम अकेली
करने वाली
बुआ... जब हँसती-बोलतीं
नहीं थीं तो वो आखिर, बदचलन
कैसे हो गई...?

18. बचे रहने देना...

बचे रहने देना...
शहर का कोई
पुराना टूटा-किला
खँड़हर...
जहाँ से सुनाई पड़े उनके
हँसने-बोलने की आवाजें...

बचे रहने देना...
पेड़ों की छाँव
जहाँ, प्रेमी लेटे-
हों अपनी प्रेमिका
की गोद
में...

और, प्रेमिका सहला
रही हो अपने प्रेमी
के बाल

बचे रहने देना
पार्क का कोई अकेला
बेंच, जहाँ, बहुत ही करीब
से वो अपनी साँसों की गर्माहट
को महसूस कर सकें

और, ले सके
अपने-अपने हाथों
में एक- दूसरे का हाथ...

बचे रहने देना
नदी का वो खास किनारा
जहाँ, वे अपने मन की
कह सकें बात...

एक, ऐसे समय में
जब, कँक्रीट के जँगल
तेजी से उगाये जा रहें हैं

और, हमारे बीच से लगभग
गायब, हो चुका है प्रेम... !

19. मल्टीनेशनल कंपनियाँ और विज्ञापन...

मल्टी नेशनल कंपनियाँ
दाई की तरह
देख लेतीं हैं पेट को...

वो हमारी जरूरत और
गैर जरूरत की
चीजों पर बड़ी बारीकी से
नजर रखे हुए
होती हैं...

वे मन-ही-मन कुटिलता से
मुस्कुराती हैं, महानगरों
में, खराब होती हवा की
गुणवत्ता को देखकर...

वो मन-मन
मुस्कुराती हैं...
शहरों में काले पड़ते कृत्रिम
फेफड़ों
को देखकर...

वो चाहती हैं, दुनियाँ की
हवा इतनी
खराब हो जाये... कि लोगों
का साँस लेना
मुश्किल हो जाये...

और, शहर पट जाये
कृत्रिम, हवा के एयर-
फील्टरों से...

और, तेजी से वो उत्पादन
करने लगे
हवा को साफ करने वाली
मशीनों का...

और, बढ़ने
लगे हवा को साफ करने वाली
मशीनों की माँग...

ऐसे समय में जब दुनिया के
तमाम जलस्रोतों पर बड़ी
मल्टीनेशनल कंपनियों
का कब्जा
हो गया है...

और रोज-रोज, नई-नई
पानी बनाने वाली कंपनियाँ

पैदा होती.. जा रहीं हैं..
जिनका अलग-अलग
तरह का पानी है...
और उसकी
गुणवत्ता को बताने वाली
एक-से-बढ़कर एक... दलीलें हैं...

एक विज्ञापन में ये बताया
जा रहा है कि-ऊँटों को भी ऐसा
वैसा पानी पसंद नहीं है..

पीने के पानी की क्वालिटी ऐसी
होनी चाहिए...
जैसा हमारे विज्ञापन में ऊँट पीना
चाहते हैं...

विज्ञापन की दुनिया में इससे बड़ा
झूठ और क्या हो सकता...?

एक ऐसे समय में जब दुनिया
के लगभग तमाम जलस्रोतों
के ऊपर
मल्टीनेशनल कंपनियों
ने अपने खूनी पँजे गड़ा दिये... हैं...
तब ऊँटों.. या जानवरों के लिए
बहुत अच्छा तो क्या... खराब पानी
भी बचेगा... ?

विज्ञापन के जरिये
लोगों में हीन
भावना को भरा जा रहा है...

वो शादी के विज्ञापन में
खूबसूरत लड़के-
लड़कियों के चेहरे दिखाकर
ये कहते हैं-कि शादी के लिए...
अपने किसी चाचा या मामा
या दूर के किसी रिश्तेदार के
लड़के-लड़कियों की जरूरत
अब नहीं है...
आप हमारे साइट
से अपना मनपसंद का जीवन-
साथी.. तलाशिये...

आप साँवले हैं या काले हैं
आपको बिना बताये ही
आपको गोरा होने की
क्रीमें, बेची जा रहीं...

और तो और, एक विज्ञापन में
'नजर सुरक्षा' कवच को भी
बेचा जा रहा है...
वही... नजर-गुजर
से बचाने वाली ताबीज जो किसी
मेले में कोई पीर-फकीर, या साधु-
संयासी बेचा करते थें

इन पीर-फकीरों को
भी मल्टी-नेशनल कंपनियों ने
हाशिये पर धकेल दिया है...

ऐसे ही धीरे-धीरे संसार की सारी
चीजें, ये मल्टीनेशनल कंपनियाँ
विज्ञापन के जरिये बेच देंगी..

और, हाशिये पर पड़ा होगा
आज-का हमारा आम-आदमी...

20. पहनने का सुख...

माँ साड़ियों की
दूकान के शोकेस
में साड़ियों को देखकर
हुलसतीं...
दूकान दार से
उसका दाम
पूछतीं, ...

साड़ियों को, बहुत
अपनेपन के एहसास
के साथ टटोलतीं...

उसकी जड़ी-मोतियों-
कढ़ाई की बारिकीयों
को गौर से निहारतीं...

निहारने के क्रम में वो
साड़ियों
के पहनने का सुख
पातीं...

उन्हें, साड़ियों को देखने
भर से ऐसा लगता कि
साड़ियाँ टाँक दी गई हो
उनके शरीर पर या कि

उनकी आत्मा
पर...

फिर, अधिक दाम
होने के कारण
वो, मायूस होकर
रह जाती...

दाम... पूछने के
एहसास भर से
वो साड़ियों को
पहनने का सुख
जी-लेतीं...

फिर, वो भारी मन से
निकल जातीं दूकान से...

दूकानदार, माँ को
अजीब-सी शक्ल
बनाकर घूरता...

माँ को कभी दूकानदारों
द्वारा, बताये गये दाम
पर ऐतबार
नहीं होता...

वो, आजीवन
दूकानदार द्वारा
अपने को ठगे
जाने के भय
के भीतर जीती रहीं...

माँ, को शौक था...
अच्छी-खूबसूरत,
जड़ीदार, कढ़ाई की गई
बनारसी साड़ियों का...

जहाँ भी, फेरीवाले को
देखतीं, उसकी साड़ियों को
खुलवाकर देखने लगतीं...

पहली बार, मुझे ये
एहसास हुआ कि,
साड़ियों को
छूकर
देखने में भी पहनने का
एहसास होता है...
उनको...

ये अलग बात है कि
माँ ने आजीवन सौ
-डेढ़ सौ रुपये से ज्यादा
की नहीं खरीदी...
कभी साड़ियाँ...

21. शुक्रिया...

आज सड़क किनारे लगे
गोलाकार लोहे की उस
जाली का देखा तो लगा,
उस लोहे की जाली
का शुक्रिया अदा
किया जाये...

जिसके बीच में एक छोटा
सा पौधा, हवा का ठँढा-ठँढा
झोंका पाकर मुदित मन
से मुस्कुरा रहा था...

शुक्रिया, उसे
बनाने वाले,
कारीगर का
भी जिसने, उस लोहे की
जाली को बनाया...

शुक्रिया, उस इंसान की
सोच का जिसने, ये सोचा
की, छोटे-छोटे पौधौं
को, जानवरों और मवेशियों
से बचाने के लिए, एक लोहे की
जाली बनानी चाहिए
जिससे हमारे, पौधे सुरक्षित
हो, पेंड़ बन सकें...

कभी-कभी मैं ये सोचता हूं
कि, जँगलों और, जँगली
जानवरों को बचाने के लिए
भी सारे जँगलों को लोहे के
सरिये
से और कंटीली तारों से घेर
देना चाहिए, ताकि, हमारे
जँगलों
और जँगली जीवों का जीवन
बचा रहे

वैसे, कभी-कभी मैं,
ये भी सोचता हूँ कि, पहाड़ों
के चारों ओर भी लोहे की
जालियाँ लगा देनी चाहिए...

जिससे, पहाड़ को लोग
काटना
बंद कर दें...

ऐसी, जालियाँ, उन नदियों-समुद्रों
के ऊपर भी लगा देनी चाहिए...
जिससे हमारा जल प्रदूषित होने
से बच सके...

पहली, बार, ये एहसास हुआ,
कि लोहे को पिघलाकर लोग,
बँदूकें बनाते है, और कभी,
कभी कुल्हाड़ी, और हिंसक
तलवारें भी, जिससे युगों से
कत्लेआम मचाया गया है...

कितने बेगुनाहों का खून
दर्ज है, उस लोहे पर
जिसे, पिघलाकर, नुकीले
धारदार हथियार बनाये गये...

मेरा मानना है कि
लोहे से केवल जालियाँ
और बाड़ बनाये जाने
चाहिए... नुकीले... धारदार
और घातक हथियार नहीं...

22. पिता की ख्वाहिश...

पिता का जब हमें
खत मिलता तो
उसमें घर का
जिक्र जरूर होता

जैसे पिता घर को ही
ओढ़ते और बिछाते
आ रहे थें

हमें ज्यामिति, और एलजबरा
से डर लगता...
पिता को कभी ना खत्म होने
वाले, मुकदमों से...

हमें कभी-कभी लगता
पिता को मुकदमे
कारावास की तरह
लगते हैं...
जिसके पीछे कैद होते
पिता...!

वो मुकदमे के जल्द से
खत्म होने की प्रतीक्षा
करते...

मुकदमे के लंबे खींचने
वाले, समय से
पिता उकताकर रह भर
जाते...

बरसात में पिता ज्यादा
आशंकित हो जाते
घर को लेकर...

घर की दिवारों
को लेकर...

उसके फूस के बने
छज्जे को लेकर...

दुनिया से विदा लेते हुए
पिता की आखिरी ख्वाहिश
थी...
कि हर... हाल में हमारा घर बचा
रहे...!

23. पागल

शहर के लोग कहते
हैं कि बेवजह हँसने
वाला आदमी पागल
होता है...

बिना बात के लोगों
को नहीं हँसना चाहिए...

बे-बात के भी भला किसी
को हँसी आती है... क्या...?
जो बिना बात के हँसता है
वो पागल होता है...

ऐसे ही शहर के लोग कहते हैं
कि अपने आप में खोया-खोया
रहने वाला और खुद से
बातें करने वाला आदमी भी
पागल होता है...

डॉक्टर की ये सलाह
थी कि आदमी
को दवाईयों से ज्यादा
हँसने की जरूरत है

आदमी अपने आप से
आजकल बातें नहीं करता

इसलिए भी वो अवसाद
ग्रस्त हो चुका है...

आदमी को अवसाद से
मुक्ति केवल अपने और
अपने आसपास वालों
से बातें करके और हँस-बोलकर
ही मिल सकती है...

कि लोगों ने आजकल
अपने और अपने
आस-पास के लोगों से बातें
करना बंद कर दिया है...

अगर कोई ना मिले तो
आसपास के पेंड़-पौधों
से बातें किया करो

कि, कुत्ते-बिल्ली,
पर्वत-पहाड़
सब बातें करतें हैं...

कभी उनसे बातें करके देखो...

शहर के लोगों ने उस डॉक्टर
को पागल करार दे दिया
था...

फिर, हमारे शहर में एक घटना
हुई...

हमारे शहर... में एक पगली...

दिखी जो... अपने आप से
बातें किया करती थी...
और बात-बेबात हँसती रहती
थी...

शहर, के लोग उसे भी पगली
-पगली कहते थें...

कोई उसे कुछ खाने को दे देता
तो वो हँसकर खा लेती...

किसी... एक सुबह...
पगली पेट से हो गई...
उसका पेट गुब्बारे की
तरह फूलकर बाहर
निकल आया था...

मैं, सोच रहा था...
पागल कौन है...?
हमेशा... हँसती...
खिलखिलाती
रहने वाली पगली...
या उस शहर, के लोग...?

24. माँ का कमरा

आज बहुत दिनों के बाद
मैं, माँ के कमरे में गया था...

खिड़की से जाड़े
की गुनगुनी
धूप वैसे ही
तैरकर आ रही थी...

जैसे... जब माँ बीमार थी
तब, आया करती थी...

लगा, माँ फिर से कराहने
लगी है... और, माँ की तकलीफ
फिर से बढ गई है...

लेकिन, अब वो कमरा खाली है
अब मेरी माँ वहाँ नहीं है...!
ना कमरे में, ना जाड़े की
उस गुनगुनी धूप में...

आज अलमारी को साफ
करते हुए मिले कुछ पुराने
पीले पर्चे...

जब माँ बीमार रहतीं थीं
वो, उस समय के डॉक्टरों

के लिखे दवाई के पर्चे थे

कुछ पुरानी पीली यादें
स्मृतियों में तैर गईं हैं

सामने के खुले बिस्तर
पर मैंने हाथ फिराई
तो लगा ये माँ का सिर
है...

लगा मैं सालों पीछे चला
गया हूँ और माँ के सिर
को दबा रहा हूँ...

और, माँ मेरे बालों में
हाथ, फिरा रही है...

माँ को साँस लेने में
तकलीफ होती थी

सामने ही पड़ा हुआ है
ऑक्सीजन का खाली पड़ा
सिलेंडर...

अब सिलेंडर की जरूरत
नहीं है... माँ को... ना ही... कभी...
पड़ने वाली है...
माँ के लिए...

माँ की साँसें कब
की थम चुकीं हैं इसलिए,
सिलेंडर भी अब

खाली
खाली रहता है

उस पर जम गई है
गर्द की एक मोटी परत

ना अब माँ के लिए
दवाईयों की जरूरत है
ना ही दवाईयों के पर्चे की

लेकिन, मेरे पास बची है
माँ की वो यादें
जो जाड़े की उदास गुनगुनी
धूप में आज भी उस कमरे में
तैरती रहती है...!

25. माफिया

उनकी नजरें हमेशा
तलाशती रहती हैं
खाली-खुली जगहें

वे, खुले चारागाहों पे,
नजरें गड़ाये हुए होते हैं

और उनकी नजरें, खाली पड़े
बाग-बगीचों पर भी गड़ी होती
है...

जो गाय-बैल, भेंड़-बकरियों
के चरने के लिए
होती हैं

उसपर वे कँक्रीट के जंगल
उगाना चाहते हैं

वे नहीं चाहते हैं कि
छोटे-छोटे बच्चे जो खेलते
हैं, खाली-खुली जगहों पर
वे वहाँ खेलें

उस पर वे कब्जा
करना चाहते हैं

उनके कब्जा करने की
चाह खत्म ही नहीं होती है

अलबत्ता, वो कब्जा करते जा
रहे है, शहर के पुराने
टूटे किले-खँडहरों के अवशेष

जो, कभी प्रेमी जोड़ों के
मिलने की सबसे सुरक्षित
जगहों में से एक
मानी जाती थी

वो साँठ-गाँठ से सब कुछ
कर सकते हैं

वो लगातार खोद कर
बेचते जा रहें हैं
नदियों का रेत
नदियाँ होती जा रहीं हैं
खाली

वे लगातार काटते जा रहें
हमारे, पहाड़ का सीना
और,

पहाड़ को फाड़कर
निकाल लेना चाहते हैं
सारे का सारा पत्थर

वे छीन लेना चाहते हैं
धरती की हरियाली
और झोंक देना चाहते हैं

हमारे भविष्य को अँधकार में

और तो और, उन्होंने
कब्जा कर लिया है,
शहर के सबसे आखिर में
बने कब्रिस्तान पर

जहाँ मुर्दे दफनाये जाते हैं

26. हमारे बीच की खाली होती जगहें

हमारे अपनों के
बीच से जब कोई बहुत ही
आत्मीय व्यक्ति गुजर
जाता है

और, खाली हो जाती है
हमारे बीच से उनकी जगह
तब, हमें ये एहसास होता है
कि लोग मर रहे हैं

ऐसे ही रोज कोई ना कोई
मर रहा होता है...
इस दुनिया के किसी हिस्से
में, रोज-कोई, पति, कोई बेटा,
कोई दोस्त, कोई माँ
कोई पिता, कहीं कोई बच्चा
मर रहा होता है

लेकिन, हमें तब कहाँ
पता होता है और लोगों
की मौतों का...

पता तो हमें
तब पता चलता है
जब हमारे बीच से
हमारा कोई आत्मीय
गुजर जाता है

हमें मौत का आभास तब
होता है, जब हमारे बीच से
हमारा अपना कोई स्नेहजनी
कोई, प्रिय बिछड़ जाता है
सदा-सदा के लिए

उनकी, बातें, उनकी
यादें स्मृतियों को हमेशा मथतीं
रहतीं है

कभी उनके कमरे
के पास से गुजरते हुए,
कभी अलमारी में
रखे, उनके कपड़ों से
कभी किसी तस्वीर को
देखते हुए
सहसा आँखें
भींगने लगती हैं
आत्मीय लोग यादों में
कभी नहीं मरते...

धीरे-धीरे हमारे बीच की जगहें
ऐसे ही खाली होती जाती हैं
और हमें पता भी नहीं चलता
कि लोग हमारे बीच से गायब हो रहें हैं
और, उनकी जगहें खाली होती जा रहीं हैं

27. सुंदर लड़कियाँ...

मेरे चाचा अक्सर कहा करते
कि उन्हें अपने बेटे की शादी
के लिए
'एक अच्छी लड़की' चाहिए...

अच्छी मतलब, सुंदर
लड़की...

लेकिन, मैं, सुंदर नहीं
थी...
ना ही मेरी माँ...

मैं, अक्सर सुना
करती कि शादी के लिए
सुंदर लड़कियों की जरूरत
होती है...

मैं, भी सुंदर लड़कियों
के जैसी ही थी

मेरे, पास भी सुंदर लड़कियों
कि तरह दो हाथ, दो पैर थें

मुझे भी सुंदर लड़कियों
के जैसी दो खूबसूरत
सी आँखें थीं

मैं, भी, सुंदर लड़कियों
की तरह हँसती तो मेरी
हँसी की आवाज भी चारों
दिशाओं में खनकती

मैं भी जब हँसती तो,
सुंदर लड़कियों की तरह
बागों में फूल खिलने
लगते

जैसा कि लोककथाओं में
होता है

फिर, सोचा मेरे जैसी कुरूप
लड़कियाँ, कहाँ जायेंगी...?
क्या उनकी कभी नहीं होगी
शादियाँ...?

मैंने, लोगों को ये
कहते हुए कभी नहीं सुना
कि, शादी के लिए सुंदर
लड़के ही चाहिए...

लेकिन, ये कहते हुए
हमेशा, सुना कि शादी
के लिए उन्हें चाहिए...
सिर्फ और सिर्फ सुंदर
लड़कियाँ...

28. एक अच्छे कल के इंतजार में...

क्यों फिर से साजिशें रची जाने
लगीं हैं...?

कुछ लोग कहने लगे हैं
हमारा नववर्ष रामनवमी
से शुरू होता है, हमें ईसाईयों
के नववर्ष को अपना नववर्ष नहीं
मानना चाहिए

हमारा नववर्ष तो रामनवमी से
शुरू होता है...

फिर, हम क्यों मनाये क्रिसमस...?
ये तो ईसाईयों का त्योहार है
हमें तो उस दिन तुलसी पूजन
करना चाहिए...

क्यों नहीं समझते ये लोग
सारे त्योहार, तो खुशियाँ लेकर
ही आते हैं.
और खुशियों का कोई
जाति-धर्म नहीं होता

ईद की सेवईयाँ, भी मीठी
होतीं हैं... और क्रिसमस का
केक भी मीठा होता है

खुशियाँ हमेशा मिठास
लिए ही आती हैं

केसरिया, पाठशालाओं में
धर्म
के भेद पढ़ाये जाने लगे हैं
एक ने कहा-नववर्ष का
मुबारक बाद
देना ठीक नहीं है

इसलिए कहो-
नववर्ष आपके लिए मंगलमय हो
मैं, समझ नहीं पाता मुबारकबाद
और मंगलमय के बीच के
अंतर को

फिर, क्यों आदमी और
आदमियत के
बीच ये इतनी बड़ी खाई
खोदी जा रही है?

वैसी, खाई जो, सन् सैंतालिस
में बन गई थी...

और, पूरा देश लहूलुहान हो गया
था...

या क्यों मार दिया गया था...
सन् 2000 में दारा सिंह को...?
और फिर, फादर स्टेन को क्यों
जिंदा जला दिया गया था...?
या क्यों मार दिया गया था

वामपंथी लेखिका-गौरी लंकेश
को?

जहाँ, गायों को सुरक्षित रखने
लिए आदमियों की भीड़
आदमियत को खोती
जा रही है...

आज, शायद हम सबसे खतरनाक
समय में जी रहें हैं
जहाँ लोगों में जातीय-धार्मिक विद्वेष
फैलाने की साजिशें की जा रहीं हैं...

और, लोगों के बीच धार्मिक, अफीम
बोकर,
राजनीति की खेती की जा रही है

लेकिन, एक ऐसा वक्त भी आयेगा
जब, हम साथ-साथ मिलकर पकायेंगें
सेवईयाँ और मीठा क्रिसमस वाला
केक...

मुझे, उसी कल का इंतजार है...

29. पिता के हाथ की रेखाएँ

पिता के हाथ को
एक बार, एक ज्योतिषी
ने देखकर बताया था

कि आपकी कुंडली में
धनलाभ होगा
संभव है कि आपको
राज योग
भी मिले

लेकिन, पिता के हाथ कभी
नहीं, लगा कोई गड़ा धन
और ना ही मिला उनको
कभी राजयोग

वो, ताउम्र, खदान में
पत्थरों को काटते रहे

काटते-काटते ही शायद घिस
गईं, पिता के हाथ की रेखाएँ
जिनमें, कहीं घन योग या
राज योग रहा होगा

इसलिए भी शायद
उनको नहीं मिला कभी
धन योग ना ही कभी

मिल सका उनको राज
योग

वो, ताउम्र बने रहे
दिहाड़ी मजदूर और
काटते रहे पत्थरों के
विशालकाय खदान को

और, काटते-काटते खदान
का पत्थर एक दिन पिता
उसी खदान में समा गये

फिर, पिता कभी घर
लौटकर नहीं आये

ज्योतिषी आज भी चौक पर
बाँच रहा था, भविष्य

30. क्षरण

कुछ दशक पहले तक
दिखता था वो, खटिया
बनाने वाला काला, मरियल
बूढ़ा
करीब अस्सी साल का
उस समय
भी रहा होगा वो बूढ़ा

लेकिन, काम करने में वो जवानों
का भी कान काटता था

वो काला, मरियल सा बूढ़ा
अलस्सुबह ओसारे में आकर
खड़ा हो जाता

आँखें अंदर तक धँसी हुईं
आँखों में कीचड़ जमा होता

तन पर एक धोती
बदन से बिल्कुल नंगा
होता वो बूढ़ा

मजदूरी में बीस रुपये लेता
और खाता, एक थरिया भात और
दाल
बीस रुपये से कम में वो कभी नहीं
बुनता था खटिया

खटिया, के चारों पायों के बीच
रस्सी की ऐसी बुनाई करता
जैसे पंक्षी अपने घोंसले की
करते हैं

वो, बूढ़ा, अलस्सुबह ही आता
और, बुनने लगता खटिया
दोपहर होते-होते वो तैयार
कर देता बुनकर पूरी खटिया
कमर, में खोंसें रहता एक लकड़ी
का नुकीला डँठल

एक बूढ़ा था, वो सिलबट्टों
को कूटता था
जिससे मसाला अच्छे से पिसा
जा सके

वो, बूढ़ा भी चार रुपये से कम
में नहीं कूटता था सिलबट्टे
मोटा लेंस का चश्मा लगाकर
वो कूटता था सिल-बट्टे

धीरे-धीरे सिलबट्टे पर आकार
उभरने लगता
लगता कोई प्रिज्म हो
या शायद, गीजा का पिरामिड
या शायद, किसी मँदिर का गुँबद
ऊपर, से वो तिकोन होता
नीचे आते- आते चौकोर
हो जाती सिलबट्टे की आकृति

अब, खटिया और, सिलबट्टे
घर में नहीं दिखते
ना ही
सिलबट्टे का उस तरह से कूटा
जाना सुनाई पड़ता है

ना ही अब अस्सी साल के
फुर्तीले बूढ़े दिखाई देतें हैं
ना ही मोटे-लेंस के चश्मे
पहनकर सिलबट्टे कूटने
वाला बूढ़ा

ऐसे ही धीरे-धीरे पूरी
दुनिया से खत्म हो जायेगी
खटिया बुनने की कला...!

और सिलबट्टे
के कूटे जाने की आवाज

31. पीठ पर बेटियाँ...

काकी अक्सर कहा करतीं
कि बाप के पीठ पर बेटे ही
होते हैं और बेटे ही
बनते हैं बाप का सहारा

बेटियाँ बाप के पीठ पर नहीं
होतीं
और, ना ही वो बाद
में बनतीं हैं बाप का सहारा

कि, बहू मुझे अबकी बेटा ही
चाहिए
इसलिए भी कि वंश
आगे चल सके

और, थके- हारे, जले-भूने
मर-मर के खेतों में काम
करने वाले बाप का सहारा
आखिर बेटे ही तो बनेंगे

बेटियाँ, फूल सी कोमल और
सुकुमारी होती हैं, कहाँ-कहाँ
बाप के साथ खेतों में जलेंगीं
फिर, बेटियाँ पराया धन
भी तो होती हैं

वो, बाप के पीठ पर नहीं होतीं
बाप के सीने में कील की तरह
होतीं हैं...!

कई देवी-थानों में परसादी
से लेकर, मुर्गा-मुर्गी, खस्सी-
पठरु गछती थीं काकी
छुटकु के लिए

कुछ, सालों बाद छुटकु आया
काकी, नाचतीं-झूमतीं इतरातीं
माँ की बलैयां लेतीं,
माँ को अशीषतीं
दूधो नहाओ पूतो-फलो
यहाँ भी पूत ही फल रहें थें
और, बेटियाँ हो रहीं थीं होम

बहुत सालों बाद जब, छुटकु
चला गया, परदेश, पढ़ने
और, काकी पड़ीं खूब बीमार

इतना बीमार, कि अपने से उठ
भी ना पाती थीं

और अस्पताल था गाँव से कोसों दूर
तब, मैनें, अपनी पीठ पर
टाँग कर पहुंचाया था
उनको अस्पताल

जब, काकी ठीक हो गईं
तो, काकी मुझे अशीषतीं
आँखों से झरते आँसू

पोछतीं जातीं...
पश्चाताप के आँसू आँखों से
मोतियों की तरह झरते जाते

इस, बात का अफसोस
काकी को आजीवन रहा
कभी-कभी आत्मग्लानि से
भरकर मेरे बालों में हाथ
फेरतीं

32. विश्वास...

माँ को दुनिया के अनुभवों
से ये पता चला था कि, बुढ़ापे
में, बेटे-बहुएँ, निष्ठुर, हो जाती हैं
इसलिए भी वो जमा करती है,
पैसे

उसे लगता है कि बुढ़ापे में
पैसा बहुत काम आता है, या
शायद पैसा ही सब कुछ है

मैं, माँ को समझाता कि
पैसा केवल, भोजन, वस्त्र
और दवाई
के लिए ही जरूरी है...

उससे ज्यादा वो
कागज की रद्दी ही है
जरुरत से, ज्यादा पैसे के
पीछे नहीं भागना चाहिए

लेकिन, माँ को विश्वास नहीं
होता और वो जमा करती जाती है
पैसे...

दुनियाँ के अनुभवों ने माँ
को मेरे

ऊपर, भी अविश्वास करने का
मौका दे दिया है

शायद, इसलिए भी माँ
जमा करती जाती है पैसे

33. आँगन, गौरैया और धूप...

आज बहुत दिनों बाद
गाँव आना हुआ है

आँगन की धूप में
बहुत दिनों के बाद
बैठा हूँ

जाड़े की मीठी धूप
गुदगुदाती है

शहरों, के अपार्टमेंट में
आँगन नहीं
बचे हैं, ना वहाँ गौरैया
आती है

आँगन में ठंड की
मुलायम और रेशमी
पीली चादर तैर रही है

गौरैया और उसके
बच्चे दानों को अपने
चोंच के बीच से खींच-खींच
कर, फुर्र-से उड़ जाते हैं

शायद, वो आपस में
कोई खेल, खेल रहे हैं

तुलसी-पिंडा, आँगन, धूप,
गौरैया, के आसपास ही हमारी
जडें होती हैं

इसलिए भी शहर वाले अपार्टमेंट
से लौट आना अच्छा लगता है

33. पहचान का सँकट...

शाम का धुँधलका गहराने से
पहले, चल पड़ा है, भेंडों और
बकरियों का झुँड़

पँक्षी-गौरये, सब के सब अँधेरा
होने तक पहुँच जाना चाहते हैं
अपने ठौर-ठिकाने तक
ताकि, वो बिछड़ ना जाएँ
अपनी झुँड से

बिछड़ने के अपने बड़े
जोखिम हैं
अपने समुदाय-समूह से
कट जाना
पशु-पँक्षियों
के लिए ये आसान नहीं होता
आदमी के लिए भी
ये बहुत मुश्किल होता है
पशु-पँक्षी समूह में होकर
अपनी सुरक्षा को लेकर
आश्वस्त होते हैं
तभी तो वो चलते हैं झुँड में

एक लोहे के सरिये को मोड़ना
बहुत ही आसान होता है, लेकिन
बहुत सारे

सरिये को एक साथ मोड़ना बहुत
ही मुश्किल होता है
इस उक्ति को भलीभाँति जानता है
आदमी

लेकिन, आदमी ने मोल लिया है जोखिम,
और भटक गया है धर्म, जाति, संप्रदाय, नस्ल
और गोरे-काले के भेद के बीच कहीं
और खो दी है मनुष्य ने अपनी पहचान

और, आदमी जब बँट गया है
तो बहुत ही असुरक्षित
हो गया है
इसलिए आदमी को लौटना
होगा वापस झुँड बनाकर अपने
समूह में

35. पिता

खाँसते-खाँसते
आज जब साँसें
फूलने लगी तो मैं
भी उठकर चला गया
वेशिन पर
थूकने अपना बलगम

तभी, बहुत सालों
के बाद पिता याद आए

वही पिता जिनको
ठँड से बड़ी
तकलीफ होती

सर्दियों के दिनों
में उनकी तकलीफ
और, बढ़ जाती

वो भी खाँसते-
खाँसते अचानक
से उठकर
वेशिन के पास
आकर खड़े हो जाते

और, थूकते उसमें ढेर
सारा बलगम

किसी एक सर्दियों
के सालों
में ही पिता ने बताई
थी मुझे एक बात
कि मेरे मरने के बाद
भी तुम दोनों भाई कभी
अलग मत
होना घर से

कि घर को बनाने में
कुछ महीनें या साल
लगते हैं

लेकिन, घर को बसाए
रखना बहुत मुश्किल है...

उस समय मैं, बहुत
छोटा था,
उनकी बात समझ
नहीं पाया था

सालों की सर्दियाँ बीतीं
ये समझने में कि घर
बनाने और बसाने
में क्या अंतर है...?

इस, बीच पिता
नहीं रहे
और, बड़े
भाई अलग-थलग
रहने लगे...

36. उद्विग्न कवि

कवि उद्विग्न है
कहीं किसी पत्रिका में छपी है
उसकी कुछ कविताएँ

किसी पाठक के द्वारा
उसे पता चला है कि उसकी
कुछ कविताएँ किसी पत्रिका
में छपी है

लेकिन, किसी कारण से अब
तक नहीं मिली है पत्रिका

कविता के माध्यम से
कवि लोक-परलोक
सत्य-मिथ्या, प्रकृति
का खूब बाँचता है ज्ञान

जैसे कवि तत्व-दर्शी हो
उसने जी लिया हो संपूर्ण संसार

उसकी पहुँच से कुछ भी दूर नहीं है

ब्रह्म, से लेकर फूलों के सौंदर्य तक का
वो करता रहता है, अपनी कविताओं में बखान

लेकिन कवि अपनी छपी रचना को सामने
न पाकर मन ही मन उद्विग्न है!

37. कूड़े में फेंकी हुई बेटियाँ...

अक्सर, अखबार
पढ़ते हुए
ये खबर दिखती थी
कि कूड़े में फेंके
मिले भ्रूण
जिसमें से
ज्यादातर होती
थीं बेटियाँ...

लेकिन, आज
एक खबर
ने चौंका दिया
पढ़ते-पढ़ते, अखबार

कि तेरह साल की एक
बेटी ने रच दिया
है... इतिहास

अपने पिता को
ले आयी है ढ़ोकर
अपनी साइकिल पर
करीब हजार
किलोमीटर..

कि अब, बेटियाँ
भी देने लगी हैं

पिता को मुखाग्नि..

बेटे जो ठेल आते
हैं, पिता को वृद्धाश्रम
लेकिन, बेटियाँ
जगाती हैं एक उम्मीद...!

कि पिता के दुःखों
को केवल और
केवल
ढो-सकती हैं
बेटियाँ...

उन लोगो की आज
झुक गई
नजरें
जो बेटियों को कूड़े
में फेंक आते थे

या जो, बेटियों
को हिकारत के भाव
से देखते थे

क्योंकि, बेटियाँ ही
ढोकर लाती हैं संस्कार
और रिवाज
एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी
तक...

पिता आह्लादित हैं
अपनी बेटी के
कारनामे से...!

कि पिता के कंठ आर्द्र
हो गए हैं...!

कदाचित, बेटियाँ ही ढोती
हैं, समस्त संसार का भार...

38. जीवित पिता का दुःख

पिता ने अपने बेटों को पढ़ाया-
लिखाया
उन्हें इस काबिल बनाया कि
वो दुनिया के एक सभ्य
इंसान बन पाए

धीरे-धीरे बच्चे बड़े
हो गये पहली से लेकर
दसवीं
तक के दस साल
फुर्र से उड़ गये

ये वो समय था, जब
पिता अपने बच्चों की हर
जरुरतों को पूरा करते रहे

बच्चे भी बड़े होनहार निकले
दोनों इँजीनियर बन गए

पिता अपनी खुशी रोक नहीं
पा रहे थे
उन्हें लगा वो दुनिया के सबसे
खुशनसीब इंसान हैं

उन्होंने पा लिया हो, जैसे स्वर्ग
की सारी खुशियाँ

कि उनसे ज्यादा संपन्न
व्यक्ति अब कोई
इस दुनिया में
नहीं है

बेटे अब विदेश चले
गए
वहीं जाकर
धीरे-धीरे सेटल
हो गये

शुरू-शुरू में बच्चे
पर्व-त्योहारों में
घर आते तो पिता
खुश हो जाते

उन्हें लगता कि जैसे
फिर से आबाद हो गया हो घर

कुछ दिनों बाद बच्चे
चले जाते
फिर पिता मायूस
हो जाते

धीरे-धीरे बच्चों ने
पर्व-त्योहारों में भी
घर आना बँद कर दिया

अब उनके पास वक्त
नहीं था पिता के लिए!
वो धीरे-धीरे घर को
भी भूलते जा रहे थें

पिता जब भी फोन करते
बच्चे अपनी व्यस्तता
गिनवाते
समय के अभाव होने
की बातें-दोहराते

किसी ऐसे समय ही
पिता ने अपने जीवित
होने के बावजूद करवा
लिया था अपना
श्राद्ध

अखबार में ये घटना
बड़ी प्रमुखता से छपी थी
कि एक व्यक्ति ने
जीते-जी करवा लिया है
अपना श्राद्ध...

सोचो क्या बीती
होगी उनको
अपने जीते-जी
करवाते हुए
अपना श्राद्ध

39. पिता पुराने दरख़्त की तरह होते हैं

आज आँगन से
काट दिया गया
एक पुराना दरख़्त

मेरे बहुत मना करने
के बाद भी

लगा जैसे भीड़ में
छूट गया हो मुझसे
मेरे पिता का हाथ

आज, बहुत समय के
बाद, पिता याद
आए

वही पिता जिन्होंने
उठा रखा था पूरे
घर को
अपने कँधों पर
उस दरख़्त की तरह

पिता बरसात में उस
छत की तरह थे
जो, पूरे परिवार को
भींगने से बचाते

जाड़े में पिता कंबल की
तरह हो जाते
पिता ओढ़ लेते थे
सबके दुःखों को

कभी पिता को अपने
लिए, कुछ खरीदते हुए
नहीं देखा

वो सबकी जरूरतों
को समझते थे
लेकिन, उनकी अपनी
कोई व्यक्तिगत जरूरतें
नहीं थीं

दरख़्त की भी कोई
व्यक्तिगत जरूरत नहीं
होती

कटा हुआ पेंड़ भी
आज सालों बाद पिता
की याद दिला रहा था

बहुत सालों पहले
पिता ने एक छोटा
सा पौधा लगाया
था घर के आँगन में

पिता उसमें खाद
डालते, और पानी भी
रोज ध्यान से
याद करके

पिता बतातें पेंड़ का
होना बहुत जरूरी
है आदमी के जीवण में

पिता बताते ये हमें
फल, फूल, और
साफ हवा
भी देतें हैं

कि पेंड़ ने ही थामा
हुआ है पृथ्वी के
ओर-छोर को

कि तुम अपने
खराब से खराब
वक्त में भी पेंड़
मत काटना

कि जिस दिन
हम काटेंगे
पेंड़
तो हम
भी कट जाएँगें
अपनी जड़ों से

फिर, अगले दिन सोकर
उठा तो मेरा बेटा एक पौधा
लगा रहा था

उसी पुराने दरख़्त
के पास,
वो डाल रहा था

पौधे में खाद और
पानी

लगा जैसे, पिता लौट
आए!
और वो
दरख़्त भी!

40. बेटियाँ..

बेटियाँ, ससुराल में
जल्दी ही बुनने
लगती हैं, रिश्ते
किसी चिड़ियाँ के घोंसले की
तरह

पराये, घर में आकर
उसे अपना घर मानने
लगतीं हैं

काकी, मामी, चाची,
बऊआ-बबुआ कहकर
वे देने लगतीं हैं, सबको
मान-सम्मान

और कुम्हार
के चाक पर बरतनों की तरह
वे गढ़ने लगती हैं
रिश्ते

उन्हें, छोटे-बड़े,
टोले-मुहल्ले
का भी खास ध्यान
रखना पड़ता है

उन्हें, बड़े-छोटों के साथ

अपने शब्दों के चयन को
लेकर, सतर्क रहना
पड़ता है

डालनी पड़ती हैं
उनको सबसे हँसकर
बातें करने की आदत

रात को जब चाँद धरती
पर उतरकर
रात में तब्दील
हो जाता है

और, आँखें भींगनें
लगतीं हैं आँसुओं से

ढुलकने लगतें हैं
तब आँखों के कोर से बहुत
पीछे कहीं छूट गये रिश्ते!

41. होड़

आजकल कोई किसी
से कम नहीं है
लोग रुकना नहीं
चाहते

कार पार्किंग की छोटी
सी बात लेकर
गोली चली
और सामने वाला आदमी
ढेर हो गया
बहने लगा सड़क पर
बेतहाशा लहू

छोटी-छोटी बात पर
लोग चलाने लगे हैं चाकू
और चाकू बाजी में मारे
जाने लगें हैं
निरीह लोग

अब, सड़कों पर चलने
में डर लगता है
पगडँडियाँ भी सुरक्षित नहीं हैं

कल, फुटपाथ पर
घूमने निकला
बीच सड़क पर

बिल्ली के एक बच्चे
को मरा पाया

पेट बीच से बिल्कुल फटा हुआ
लहू के कतरे रोड पर बिखरे हुए

एक दिन एक कुत्ता बीच सड़क पर
मरा पड़ा था
दाँत बाहर की तरफ निकला हुआ

लोग किसी के पीछे चलने में
अपनी हेठी समझने लगे हैं

निकल जाना चाहतें हैं एक-दूसरे से आगे

कोई रुककर बात नहीं करता
सब चलते-चलते करते हैं

थोड़ा रुककर सुस्ताने
की आदत शायद आने वाले
समय में खत्म हो जायेगी

क्या अच्छा नहीं होगा
तेज चलने की जगह

थोड़ा-रुककर सुस्ता लें
और कर लें
प्रेम की थोड़ी बातें!

42. चुनौती को अवसर बनाईए...

लाल किले से एक मुनादी
हुई थी... कि इस विकट
समय में चुनौती को अवसर
बनाईए

जब भूख एक
चुनौती थी

तो, वो अवसर कैसे
बनती...?

मजदूरों के लिए भूख
एक चुनौती थी
तो वो उनके लिए अवसर
कैसे बनती...?

लेकिन, बिचौलियों
के लिए
भूख अवसर बनी
वो डकार गये मजदूरों का
किराया

और छोड़ दिया
उन्हें मरने के
लिए सड़कों पर
और ले भागे बिचौलिए

मजदूरों की
जीवण भर की कमाई

भूख किसी के लिए
चुनौती बनती रही
और, किसी के लिए
अवसर

43. चिड़ियों को मत मरने दो..

चिड़ियों को मत मारो
उन्हें धरा पर रहने दो...

फुदकने दो हमारे घर
आँगन में
उनके कलरव को बहने दो

दुनिया के कोलाज पर
रंगों की छटा बिखरते
रहने दो

मत मारो चिड़ियों को
इन्हें धरा पर रहने
दो

घरती भी मर
जाती है चिड़ियों
के मरने से

चिड़ियों के बच्चे भी मर
जाते हैं
चिड़ियों के मरने से

लाल, गुलाबी, नीले,
पीले, चितकबरे, और हरे
रंगों के कोलाज को इस

धरा पर सजने दो

रंगों के रहने से ही
सपने भी रहते हैं जिंदा
इसलिए भी
चिड़ियों को मत मरने दो

इस धरा पर रंगों के कोलाज
को सजने दो

फुदकने दो हमारे
घर आँगन में
उनके कलरव को बहने दो

मत, मारो चिड़ियों को उन्हें जिंदा रहने दो

44. संवेदना

बाँध दो पट्टियाँ
गाय अगर दिखे
चोटिल

लगा दो कुत्ते
के जख्मों पर
मरहम

ठँड में दे दो
किसी बेजुबान को
बरामदा का कोई
कोना

पिला दो पानी
उस परिन्दे को
जो प्यासा है

दे दो खाना
उनको जो
भूखे हैं

बाँट लो दुःख
उनका जो दुखी हैं...

45. एक आदिवासी की घोषणा...

आदिवासी कह रहा है
हमें नहीं चाहिए तुम्हारा विकास
नहीं चाहिए तुम्हारे कँक्रीट के जँगल
हमें नहीं चाहिए बोतल वाला पानी

तुम मत काटो
हमारे पेंड़

ताकि मिट्टी का कटाव न हो
और, खेत जुड़े रहें

और हम भी
जुड़े रहे अपने खेतों से

कि अगर तुम हमारी जमीन
ले लोगे तो तुम लगाओगे
उस पर अपने कारखाने

कारखाने का धुँआ
घोंट देगा हमारा दम

शोर से फट जाएँगें
हमारे कान

और पीना होगा
हमें भी गँदा पानी

मत करो हमारी नदियों को दूषित
कि हमारी मछलियाँ मर रहीं हैं

जब हमारे जँगल बचे रहेंगे
तब हम उनसे चुनकर
लाएँगें लकड़ियाँ
और बेच आएँगें
बाजारों में

और उन्हीं लकड़ियों पर
डभकाएँगें, मीठा-मीठ भात

और पियेंगे अपनी नदियों
का साफ-मीठा पानी

बचे रहने दो हमारी नदियों का
साफ और मीठा पानी

हमें रहने दो अपने जँगलों के साथ,
हमारी नदियों के साथ

हम चुन लेंगें महुआ के फूल
और हम रुखा-सूखा, और
बासी भी खा लेंगें

हम मना लेंगें अपने
पर्व करमा, और सोहराय

हमें जीनो दो माँदर
के संगीत के साथ
तुम सब लौट जाओ
हमें नहीं चाहिए विकास

46. जब जरूरत हो हमें बुला लेना..

हम फिर चले आएँगे...

वो चल पड़े हैं
अपने कँधों पर
दुःखों का पहाड़ लादे

कि उनके कँधे पर
लदे हैं छोटे-छोटे बच्चे
कुछ माल-और असबाब

चलते-चलते पैरों में
पड़ गए हैं छाले
और रिसने लगा है लोहू

बनाते-बनाते और करते
करते काम घिस गई हैं,
हाथ की रेखाएँ कि अब
उनमें नहीं दिखता कोई भविष्य
और वर्तमान

जबकि शहर को हमने
बनाया और बसाया
लेकिन, शहर ने पीठ फेर
लिया है हमसे

सुख, का साथी पूरा शहर था
लेकिन, दुःख केवल हमारा
होकर रह गया है
कोई दया दिखाकर केले
दे देता है, कोई दे देता है
एक डूभा भात

हम जा रहें हैं, लेकिन
अगर हम बच गए और

जब कल को फिर से
शहर बसाना होगा
हमें आवाज देना हम फिर चले
आएँगे
तुम्हारे शहर बसाने

47. नदी का सवाल..

नदी पूछ रही है
कि जिस तेजी से मैं सूख रही हूँ
तुम कहाँ जाओगे...?
जब तुम्हें करना होगा
अपने प्रियजनों का अंतिम संस्कार

नदी पूछ रही है कैसे होगा...?
तुम्हारे पूर्वजों का तर्पण
जब गया के घाट सूख जाएँगे
तब कैसे चुकाओगे अपने
पूर्वजों का ऋण भार..?

नदी पूछ रही है कैसे होगी
गँगा की आरती
मणिकर्णिका घाट पर
जब मैं सूख जाऊँगी?

कि कैसे जलेंगें
मेरे तट पर लाखों दीये
जब मैं सूख जाऊँगी

कि नदी पूछ रही है
कि जब मैं सूख जाउँगी
तो कैसे दोगे चैती और कार्तिक
छठ पर्व में अर्घ्य

नदी पूछ रही है
फिर कहाँ विसर्जन करोगे
अपनी पूजा की मूर्तियाँ

सोच लो, अभी भी वक्त है

48. जब जँगल नहीं बचेंगे...

हम कैसा विकास कर रहें हैं..?
जहाँ अब हवा भी साफ नहीं है

जहाँ नदियों की छातियाँ सूख गई हैं
कि जहाँ पहाड़ हो रहें हैं खोखले

और काटे जा रहे हैं लाखों
लाख पेंड़

नदियाँ व्यथित हैं
मानव-मलमूत्र और
कारखानों के कचरे को
ढोकर

दामोदर की वनस्पतियों
और जड़ी-बूटियों में
समा गई हैं जहरीली बारूदी
गँध

कारखानों से निकलने वाले
बारुदी कचरे से
मछलियाँ त्याग रहीं है जीवण

आखिर कैसा भविष्य गढ़ रहें हैं हम?
जहाँ कँक्रीट के जंगल उगाए जा रहे हैं
कि जहाँ नहीं बचने वाले पोखर और तालाब

कि जहाँ शहर बसाने
के लिए गाँव तबाह
किए जा रहें हैं

सोचो किस तेजी से
कँक्रीट के जँगलों की
ओर बढ़ रहें हैं हम

जहाँ न कल खेत बचेंगें ,
न चौपाल, न नदी ना तालाब
न ही होंगे झरनें

फिर कहाँ करेंगे वनभोज,
कहाँ गाने जाएँगे चैता और कजरी
कहाँ होगी फागुन के गीतों की बयार

फिर, चित्रकारों के चित्रों
में ही सिमट कर रह जाएँगे
गाँव, पहाड़, नदियाँ, झरनें और
तालाब

49. प्रेम...

प्रेम चाहिए होता है
गाय से लेकर कुत्ते तक को

एक रोटी रोज खाकर दौड़ने
लगता है
हमारे पीछे-पीछे कुत्ता

एक रोटी रोज देने से
गैया भी हक जताकर
ठेलने लगती है
हमारे घर का दरवाजा

आखिर, कौन होता है
इन सबके पीछे
जो दिलाने लगता है
उनको ये अधिकार

कि कैसे रोज कबूतर दाना
डालने वाले को देखकर
गूँटर-गूँ, गूँटर-गूँ करने
लगता है

कि तोता अपने मालिक
को देखकर मीठु-मीठु
चिल्लाने लगता है

केवल खाने के लिए नहीं
बल्कि प्रेम के अदृश्य धागे से
बंध जाते हैं हम!

50. प्रेम...

स्त्री से करने के
लिए प्रेम को एकांत
चाहिए होता है

समर्पण ही होती है
प्रेम की
पहली और आखिरी शर्त

खँड़हरों और किलाओं में भी
सृजित होता है प्रेम

प्रेम में इंतजार का भी
एक अलग ही
होता है सुख

प्रेम होने के बाद
जीवण से बुहरने लगते हैं दुःख

जब झड़, जाते हैं
जीवण रुपी, पतझड़ में
पेड़ों की शाखों से पत्ते

और, जीवण लगने लगता है
कुँभलाने
तब, प्रेम होने का मतलब होता है
जीवन में वसंत का आना!

51. स्त्री और नदी...

स्त्री बाल्यकाल में
होती है, सहज-सरल
बहती है कलकल
संगीत की तरह

थोड़ा आगे बढ़ने पर
स्त्री पकड़ती है
नदी की तरह गति

किशोर वय तक
आते-आते
ही नदी में उठने
लगती हैं तरंगें
और वह हो
जाती है चंचल

युवा होते-होते
नदी में उठने
लगता है उफान
और वह हो जाती है
अल्हड़

नदी की तरह
स्त्री के भाव भी
गहरे होते हैं

और, वह नदी की तरह
हो जाती है शांत

लेकिन, उसके जीवण
में आते रहते हैं तूफान

स्त्री अपने दुःखों को
औरों से छुपाती है
नहीं कहती सबसे
अपने मन की बात

कदाचित, स्त्री के आँसुओं
से बनी है नदी

52. माँ के हाथ का स्वाद...

माँ के हाथों से बनी चीजों
का अलग ही, स्वाद होता है

नहीं मिल पाता
वो स्वाद अब औरों
के हाथों से

माँ को पता थी
खाने की चीजों में पड़ने
वाले मसालों की मात्रा
और आँच की ताप का अंदाजा

वो, बाँट देती थी
थोड़े से खाने को
बराबर-बराबर हिस्सों में

उन दिनों थोड़ा
सा खाकर भी मन तृप्त
हो जाता था

बाद में कई होटलों
और रेस्टोरेंट
से मंगवाया है
मैंने खाना
लेकिन, नहीं मिलती
उसमें वो महक,
वो लाड़, वो स्वाद

53. तकिये...

रात को सोते समय
हम रख देते हैं
अपना सर तकिये पर
और देखते हैं सपने

तकिए, के
रूई के जैसे
मुलायम होते हैं
सपने

नींद बुनती है खट्टे-मीठे
सपने और
धुनिया बनाता है तकिए

शायद, कभी धुनिया
ने सोचा हो
बनाते हुए तकिए
कि जैसे सपने
मुलायम होते है
और नींद भी,
कि यही सोचकर
वो बनाता है रुई से
मुलायम तकिए

नींद, सपने, और तकिए
तीनों मुलायम होते हैं

दद्दा कभी- कभी कहते थे
कि जो ख्वाब हम अपने जीवन में
देखते हैं
लेकिन, उसे कभी पूरा नहीं
कर पाते
इसलिए भी हमें
दिखते हैं सपने

सपनों का होना जरूरी है
आदमी के जिंदा होने के लिए

54. मजदूर

अगर मजदूर न होते
दुनिया तब शायद
इतनी खूबसूरत न होती

चाहे वो बाबू साहेब के खेत हों
जहाँ आज धान की बालियाँ
लहलहा रही हैं

न बन पाती
दुनिया की वो तमाम
बड़ी और खूबसूरत इमारतें

ताजमहल किसने
बनवाया इतिहास में जब ये
पूछा जाता है
जबाब यही होता है कि
ताजमहल शाहजहाँ
ने बनवाया
तब, इतिहास भी जादुई झूठ
बोल जाता है

कोई लालच नहीं है
उनके मन में
कई
बड़ी-बड़ी, इमारतों
और दूसरों के सपनों

के आगे उनके अपने
सपने और हाथ
खुरदरे हो गए हैं

नहीं बना पाते वो अपने
लिए कभी कोई कोठी

क्योंकि, उनकी आँखें केवल
खूबसूरत सपने बुनना
जानती हैं
उनके सपने कभी नहीं होतें
हैं, साकार

कभी भी उनके लिए एक
कटोरा भात से बड़ा
नहीं होता है कोई ख्वाब

उनकी आंखें जगती हैं
केवल, मालिक के सपनों के लिए

55. इंतजार में है गली...

ये अजीब इतेफाक
है, उस लड़की के साथ कि
एक ही राह से गुजरते हुए
एक ही रास्ते में पड़ता है
उसका घर और, ससुराल

सड़क से गुजरते वक्त
मुड़ती है एक गली
जो जाती है उसके पीहर तक,

पीहर, कि गली से लौटते समय
बहुत मन होता कि वो
घूम आये अम्मा-बाबू के घर
कि देख आये अपने हाथ से लगया
पेंड़ पर का झूला...

दे, आये फिर, तुलसी-
पिंडा को पानी...

दिखा दे एक बार फिर,
घर-आँगन में बाती

या कि घर के आँगन के
काई लगे हिस्से को
रगड़-रगड़ कर कर दे साफ
जहाँ, सीढ़ियाँ उतरते
वक्त गिर गई थीं माई

दे, आये एक कप चाय
और, दवाई अपने बाबू को
जिनको चाय की बहुत तलब
लगती है

जमा कर दे फिर से
अलमारी में
घर के बिखरे कपड़े

सीलन लगी
किताबों को दिखा
आये, धूप

दुख रहे सिर, पर
रखवा, आये अम्मा
से तेल
करवा आये
एक लंबी मालिश

खाने, चले चूरण वाले
स्कूल के चाचा की चाट..

कर, ले थोड़ा ठहरकर
अपने भाई-बहनों और पड़ौस
की सहेलियों से हँसी और ठिठोली

दौड़कर, चढ़ जाये वो,
छत की सीढ़ियाँ...

बाँध, आये भाई कि कलाई
पर राखी

एक बार फिर से भर ले
अपनी आँखों में ढेर सारी नींद...

लेकिन, नहीं कदम अब
उधर नहीं जाते, नहीं थमते
उस दरवाजे तक
जहाँ सालों रही...

एक अजनबी पन उतर आया
है, उसके व्यवहार में
नहीं ठहरते उसके कदम
पीहर तक आकर...

वो, जानबूझकर, बढ़
जाती है आगे..
जहाँ पहुँचकर उसका
एक आँगन और उसके बच्चे
इंतजार कर रहे हैं
उसका..

बाट, जोहती और
ताकती हुई गली हैरत
में है, लड़की को देखकर...

56. आओ मिलकर दीप जलायें

आओ मिलकर दीप जलायें
मन के अंधियारे को मिटायें

रगड़-रगड़ कर मन के मैल
को आओ, इस दीवाली चमकाएँ

शत्रुता को भुल कर
आओ उनको मित्र बनायें

विपन्नता, को दूर भगायें
आओ, मिलकर दीप जलायें

इस धरा पर सब-सुखी संपन्न हों
आओ, चलो कुछ ऐसा कर जायें

पोंछ आयें, उन चेहरों से मलिनता
जो वर्षों से हैं कुम्लायें

बाँट आयें उन घरों में दीये, व मिठाईयाँ
वो भी पुलकित हो दीप जलायें

सोये ना कोई इस धरा पर भूखा
उनको भरपेट भोजन करवाएँ

प्रभु से करतें हैं वंदन हम
ना कोई हो दुःखी सब हों खुशहाल

विपन्नता से मुक्त करो हे प्रभु
इस धरा पर ज्ञान का दीप जलें

संसार से नाश हो दुर्दिन का
ऐसी खुशियों के दीप जले

नाश हो मानवता के अहितकारों का
ऐसी कुछ ईश्वर से विनती करें

पोंछ आयें हम उनके आँसू
जो, अब तक रोते आए हैं

आओ, मिलकर दीप जलाएँ
इस धरा पर खुशियाँ फैलाएँ

57. कील

कीलों को बनाने वाली
सोच ने हमेशा चाहा की
कीलों से जोड़ी जाएँ चीजें

और कीलें भी साबुत
ठुकतीं रहीं हमेशा अपने
को समा दिया किसी गुमनाम
अंधेरे में...

जिस पर टँगें थे
गाँधी, टैगोर और नेहरू
की तस्वीरें..

तस्वीरों के पीछे के घुप्प
अंधेरे में भी खुश रहीं थीं कीलें
कि, इन महान आत्माओं का
वो, आजीवन उठाते रहे थे
बोझ

कीलें ईमारत की नींव
की तरह थीं

जिन्होनें अपने होने के वजूद
को हमेशा नकारा...

और, साबुत दफ्न कर दिया
अपने को दीवारों के पीछे

किसी, ने नहीं चाहा ना कील
बनाने वाले ने
ना खुद कील ने की वो दूसरों के रास्ते
को रोकें

लेकिन, हमारे समय के एक तानशाह
ने ठोंक दीं हमारे किसानों के रास्ते में
कीलें

कीलें हैरान थीं कि ये आखिर
कौन सा समय आ गया है
जब किसी चीज को जोड़ने के लिए
नहीं बल्कि किसानों का रास्ता रोकने के लिए
आज सड़कों पर ठोंकीं जा रहीं थीं
कीलें

कीलों तब बहुत शर्मशार हुईं
कि, उसका इससे बदतर इस्तेमाल
इतिहास में कभी नहीं हुआ होगा कि
उन्हें किसी का रास्ता रोकने के लिए
सड़क के ठीक बीचों बीच ठोंका गया हो

तब, कीलों ने सवाल पूछा
कील ठोंकने वाले हाथों से
की क्या खाएँगे तुम्हारे बच्चे...
अगर, अनाज होगा कारपोरेट के हवाले

और कारपोरेट, ठोंक रहा होगा
तुम्हारी ताबूत में आखिरी कील...

58. कील - 2

कीलों ने हमेशा चाहा
की वें
हमेशा पुल बनें
और हमेशा जोड़ती जायें
आने-जाने का रास्ता...

उन्होंने सीढ़ी बनना गँवारा
किया ताकि लोग आगे
बढ़ सकें और छू
सकें आसमान...

कील बनाने वाली सोच
ने कभी ये नहीं सोचा की
उससे बनाई जाये
कोई बँदूक...

या कि लैंड़माइंस
जिससे लोग लहूलुहान हो जायें
और, मर जायें
जिबह किये हुए बकरे की तरह
फड़फड़ाकर...

उन्होंने साबुत ठुकना
मँजूर किया
ताकि और लोगों का वजूद बचा
रहे...

फिर, किसने सोचा बँदूक
बनाने के लिए
या फिर, लैंडमाइंस में किसने
किया
कीलों का इस्तेमाल...?

कीलों ने आदमी
के लिए कभी ऐसा
नहीं सोचा...

फिर, कौन हैं
वो, हाथ जो बनाते हैं
बँदूक, और बिछातें
हैं, लैंडमाइंस...?

❐❐

नाम - महेश कुमार केशरी
जन्म - 6 नवंबर, 1982 (बलिया, उ.प्र.)
शिक्षा - 1. विकास में श्रमिक में प्रमाण पत्र (सी.एल.डी., इग्नू से)
2. इतिहास में स्नातक (इग्नू से)
3. दर्शन शास्त्र में स्नातक (विनोबा भावे वि.वि.से)
राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन- सेतु (पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित), वागर्थ, कथाक्रम, पाखी, अंतिम जन, नेपथ्य, भिदेशक, हरिगंधा, प्राची, एक नई सुबह, एक और अंतरीप, दुनिया इन दिनों, रचना उत्सव, स्पर्श, सोच-विचार, गृहशोभा, समय-सुरभि-अनंत, ककसार, अभिनव प्रयास, सुखनवर, समकालीन स्पंदन, साहित्य समीर दस्तक, विश्वगाथा, स्पंदन, अनिश, साहित्य सुषमा, प्रणाम-पर्यटन, हॉटलाइन, चाणक्य वार्ता, दलित दस्तक, सुगंध,
नवनिकष, कविकुंभ, वीणा, यथावत, हिंदुस्तानी जबान, आलोकपर्व, साहित्य सरस्वती, युद्धरत आम आदमी, सरस्वती सुमन, संगिनी, समकालीन त्रिवेणी, मधुराक्षर, प्रेरणा अंशु, तेजस, दि अंडरलाईन, शुभ तारिक, मुस्कान एक एहसास, सुबह की धूप, आत्मदृष्टि, हाशिये की आवाज, परिवर्तन (आनलाईन, पत्रिका) गोवा, विश्वविद्यालय से प्रकाशित, युवा सृजन, अक्षर वार्ता (आनलाईन पत्रिका), सहचर ई-पत्रिका, युवा-दृष्टि ई- पत्रिका, संपर्क भाषा भारती, दृष्टिपात, नव साहित्य त्रिवेणी (पाक्षिक पत्रिका), नवकिरण (आनलाईन पत्रिका), अरण्य वाणी, राँची एक्स्प्रेस, अमर उजाला, प्रभात खबर, पंजाब केसरी, नेशनल एक्स्प्रेस, युग जागरण, शार्प-रिपोर्टर, प्रखर गूंज साहित्यनामा, कमेरी दुनिया, आश्वसत के अलावे अन्य पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
चयन - प्रतिलिपि कथा-प्रतियोगिता 2020 में टॉप 10 में कहानी गिरफ्त का चयन।
प्रकाशित कृतियां
1. कहानी संकलन - मुआवजा प्रकाशित।
2. कविता संकलन - 'जब जंगल नहीं बचेंगे' कविता संकलन रवीना प्रकाशन नई दिल्ली के द्वारा निःशुल्क प्रकाशित।
3. संपादन - प्रभुदयाल बंजारे के कविता संकलन 'उनका जुर्म' का संपादन।

4. www.boltizindgi.com वेबसाइट पर कविताओं का प्रकाशन।
5. शब्द संयोजन पत्रिका में कविता 'पिता के हाथ की रेखाएँ' का हिंदी से नेपाली भाषा में अनुवाद सुमी लोहानी जी द्वारा और 'शब्द संयोजन' पत्रिका में प्रकाशन आसार-2021 अंक में।
6. चयन - साझा काव्य संकलन 'इक्कीस अलबेले कवियों की कविताएँ' में इक्कीस कविताएँ चयनित
(7) पुरस्कार - सम्मान - नव साहित्य त्रिवेणी के द्वारा - अंतर्राष्ट्रीय हिंदी दिवस सम्मान-2021

संप्रति - स्वतंत्र लेखन एवं व्यवसाय
संपर्क- श्री बालाजी स्पोर्ट्स सेंटर, मेघदूत मार्केट फुसरो, बोकारो झारखंड-829144
मो- 9031991875